प्रेमचंद के साहित्य में मानव जीवन : एक अध्ययन

Ravindra

Research Scholar
Molana Aajad University Jodhpur Rajasthan

प्रस्तावना

"प्रेमचंद हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधी साहित्यकार थे। जब उन्होने लिखना शुरू किया था, तब संसार पर पहले महायुद्ध के बादल मंडरा रहे थे। जब मौत ने उनके हाथ से कलम छीन ली, तब दूसरे महायुद्ध की तैयारियाँ हो रही थी। इस बीच विष्व मानव संस्कृति ने बहुत से परिवर्तन में सहायता भी की। करोड़ों मनुष्यों का संहार करने वाले दो महायुद्धों के बीच प्रेमचंद की वाणी अपने भविष्य में अटल विष्वास रखने वाली भारतीय जनता की वाणी हैं। राजनीतिज्ञों के कोलाहल और तोपों की गड़गड़ाहट को भेदती हुई यह वाणी आज और अधिक स्पष्ट सुनाई देती है। तमाम कठिनाइयों और बाधाओ को पार करती हुई भारतीय जनता से प्रेमचंद कहते है– यह अंत नहीं है, और आगे बढ़ो और आगे बढ़ो ? जब तक कि रंग भूमि में विजय न हो, जब तक कि देष का कायाकल्प न हो, जब तक कि इस 'कर्मभूमि' में 'गबन' और 'गोदान' के 'होरी' व 'रमानाथ' का त्रस्त होना बंद न हो और हमारा देष एक नई तरह का सेवासदन', एक नई तरह का 'प्रेमाश्रम' न बन जाए"।

प्रेमचंद साहित्य में यथार्थ और आदर्श का समन्वय चाहते थे। उनका कथन है कि यथार्थ को प्रेरक बनाने के लिए आदर्श और आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ की आवश्यकता है। वे अपने उपन्यासों के चित्रण में यथार्थवादी थे और उनके समाधान में आदर्शवादी । उपन्यासकार अपने पात्रों का चरित्र–चित्रण कैसे करे? उनका अध्ययन करके उन्हें ज्यों का त्यों, बिना किसी काट–छाँट के पाठकों के सामने रख दे या किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए चरित्रों में कुछ परिवर्तन भी करे

किसी साहित्यकार की साहित्य दृष्टि उसके जीवन–दर्षन द्वारा निर्धारित होती है। जीवन – दर्षन उसके जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को कहते है जिसे वह अपने वषानुक्रम संस्कार, षिक्षा, संस्कृति परिवेष जीवन की प्रमुख घटनाओं, अनुभव व चिन्तन के आधार पर बनाता है। ज्यों–ज्यों जीवन और समाज से अधिकाधिक रूप में परिचित होता जाता है, अपने जीवन–दर्षन को परिवर्धित व परिमार्जित करता हुआ विकसित करता है। जीवन– दर्षन के समानान्तर साहित्य–दृष्टि भी परिवर्धित व परिमार्जित होती हुई विकास के पथ पर अग्रसर होती है। यही साहित्यकार की सफलता है। सफल साहित्यकार समय और परिवेष के साथ ही जीवन के क्षेत्र में आगे बढ़ता है और अपने विचारों से जनता को अवगत कराता है। स्पष्ट ही ऐसी स्थिति में युग का वातावरण तथा युग की माँग भी उसके जीवन–दर्षन एवं साहित्य–दृष्टि को बनाने में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रेमचंद की साहित्य दृष्टि एवं मानव मूल्य विधायक तत्व है। विराट मानव संस्कृति की धारा में भारतीय जन – संस्कृति की गंगा ने जो कुछ दिया, उसका प्रमाण प्रेमचंद के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकड़ों कहानियाँ है । प्रेमचंद स्वयं के बारे में लिखते है– "मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें गड्ढे तो कहीं –कहीं है, पर टीलो, पर्वतों घने जंगलों, गहरी घाटियों और खण्डहरों का स्थान नहीं है।

यह आवाहन भारतीय जनता को साम्राज्यवादी व सामवादी शक्तियों के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देता है।

प्रेमचंद का प्रकाषित हो चुका साहित्य कम नहीं है, और उर्दू में उनकीबीस खण्डों में प्रकाशन हो चुका है। प्रेमचंद की मान्यता है कि " हम (साहित्यकार) तो समाज का झंडा लेकर चलने वाले सिपाही है और सारी जिन्दगी के साथ ऊंची निगाह हमारे जीवन का लक्ष्य है।" उनकें अनुसार "लेखक जो कुछ लिखता है अपने कुरेदन से लिखता है अर्थात जब लेखक संवेदनात्मक पीड़ा का अनुभव करता है, सत्य का साक्षात्कार करता है तभी लिखता है, और जब तक यह पीड़ा लेखक में न हो 1. यह सत्साहित्य की रचना नही कर सकता । प्रेमचंद ने साहित्यकार को दलितों और विवष जनों का वकील माना है।" वह साहित्यकार, मानवता, दिव्यता और भद्रता का बाना बाँधे होता है, जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है– चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। प्रेमचंद युग में साहित्य आडम्बर से मुक्त हो गया और अनुभूति की सच्चाई उसमें प्रस्फुटित होने लगी ।

प्रेमचंद साहित्य को जन– सामान्य की सेवा के साथ जोड़ने के आकांक्षी है। वे व्यसन – जन्य साहित्य को आत्महीन एवं निर्जीव मानते है । उनके अनुसार संकुचित भावनाओं के लिए साहित्य में स्थान नहीं है। उनकी मान्यता है कि साहित्य का कार्य ही मानव ह्रदय को परिष्कृत एवं विष्व मैत्री की भावना को स्थापित करना ळें हिन्दी साहित्य के इतिहास और परम्परा को जानने वाले लोग सहज रूप से यह समझाते है कि प्रेमचंद बार–बार प्रेम का जीवन का मुख्य विषय न समझने पर क्यों जोर देते थें। वास्तव में वह बुनियादी तौर पर प्रेम का विरोध नहीं करते थे। उनका मतलब प्रेम कहानी के जरिए पाठकों को प्रेरणा और षिक्षा देने से ही था ।

प्रथम असयोग आन्दोलन के दौरान प्रेमचंद ने कलम की तलवार से साम्राज्यवाद से लोहा लिया। प्रेमाश्रम जैसा श्रेष्ठ राजनैतिक उपन्यास लिखा, जिसे पढ़ पढ़कर नौजवान लोग स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े । विदेषी सत्ता के प्रति जनता का विद्रोही स्वर सन् 1857 के देष व्यापी आन्दोलन के फूट पड़ा था । 'इंडियन म्यूटिनी' के लेखक "जान के शब्दों में "गंगा पार के इलाके में ही नहीं, दोआब के जिलों में भी –ग्रामीण जनता उठ खड़ी हुई थी और जल्दी ही ऐसा कोई गाँव या शहर नहीं बचा, जो अंग्रेजो के विरूद्ध उठ खड़ा हुआ हो। " बंगभंग की घटना 1916 में महात्मा गाँधी का पदार्पण 1919 में 1905 मे जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड 1931 में असहयोग आन्दोलन 26 जनवरी 1930 का लाहौर अधिवेषन इत्यादि ऐसी राजनीतिक घटनायें थी जिन्होंने प्रेमचंद को भी आन्दोलित किया था। प्रेमचंद के उपन्यासों मे जीवन का बड़ा व्यापक और विविधतापूर्ण चित्रण है– राष्ट्रीय आन्दोलन कृषक समस्या, शोषण मानवतावाद भारतीय संस्कृति, विधवा–विवाह, अनमेल विवाह, दहेज–प्रथा, किसान महाजन, समाज में व्याप्त छुआछूत एवं साम्प्रदायिता की समस्या और राजनीतिक समस्या इत्यादि। उनके उपन्यासों के समान ही उनकी कहानियाँ भी बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखी है, जो अनेक कहानी–संग्रहों के रूप में संकलित हुई है। उनकी कहानियों का मुख्य संग्रह मानसरोवर (भाग – 8) है। प्रेमचंद ने कुछ जीवनियाँ भी लिखीं – रामचर्चा दुर्गादास तथा कलम तलवार और त्याग (दो भाग) कुछ विचार और साहित्य का उद्देष्य में उनके लेख और टिप्पणियाँ हैं ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर प्रेमचंद के साहित्य मे जीवन का सर्वेक्षण करते हुए लिखते है– प्रेमचंद एक जागरूक कलाकार थे। कल्पना की अपेक्षासत्य अन्तर्मुख की अपेक्षा बहिर्मुख मृत्यु की अपेक्षा जीवन, निराषा की अपेक्षा आषा तथा कुरूपता की अपेक्षा सौन्दर्य के सच्चे उपासक थे। उनके व्यक्तित्व में उच्च विचार और सादा जीवन दृष्टिगोचर होता है प्रेमचंद जितने बड़े साहित्यकार थे, कहीं उससे बड़े मनुष्य थे। मानवतावाद के पुजारी थे। रंगभूमि उपन्यास के सूरदास के माध्यम से उन्होंने जीवन संबंधी विचारधार का अभिव्यंजन किया है। "सूरदास द्वारा गाया गया गीत इस संदर्भ में द्रष्टव्य है–

भई क्यों रन से मुँह मोड़े ?
वीरों का काम है लड़ना,
कुछ काम है जगत में करना
क्यो निज मरजाद छोड़े?
भई क्यों रन से मुँह मोड़े ?
क्यो जीत की तुझको इच्छा,
क्यों दुःखी से नाता जोड़े ?
क्यों रन से मुँह मोड़े ?
तू रंगभूमि में आया
दिखलाने अपनी माया
क्यों धरम नीति की तोड़े ?
भई क्यों रन से मुँह मोड़े?

सूरदास का उपर्युक्त कथन प्रेमचंद के जीवन से साम्य रखता है। जीवन की समस्त आपदाएँ प्रेमचंद के साहसपूर्ण स्वभाव के समक्ष नतमस्तक हो जाती थी। प्रेमचंद अपने पात्रो को मानवीय रूप मे देखते है। अतः उनके मानवीय क्रियाकलापो को घृणा दृष्टी से नही देखते है। उनके पात्रो मे दुःख झेलने की अपार क्षमता है। ऐसा नही कि ये दुःखो को देखकर आत्महत्याकर लेते है। "गोदान' में प्रो. मेहता के माध्यम से उन्होने जीवन के प्रति अपने विचारो का अभिव्यंजन किया है। धन के लिए उन्होने आदर्षो के साथ समझौता नही किया। वे स्वतः तपस्वी एवं फकीर थे। उनका जीवन अभवो के परिपूर्ण था। फिर भी वे जीवन से कभी निराष नही हुए। उन्होंने धन की कमी को कभी अधिक महत्व

नही दिया। प्रेमचंद के ये विचार " गोदान उपन्यास गोविन्दी द्वारा व्यक्त हुए है। वह अपने पति खन्ना से कहती है– सत्य पुरूष धन के आगे कमी नही झुकते वे देखते है तुम क्या हो अगर तुममें सच्चाई है, पुरुषार्थ है तो वे तुम्हारी पूजा करेंगे। प्रेमचंद अपने साहित्य में धन के दुर्गुणों को दिखाते है। उनकी मान्यता है कि धन मनुष्य को पथ भ्रष्ट कर देता है। वह अन्यायी भोगी एवं विलासी हो जाता है। धन के कारण मनुष्य स्वार्थी हो जात है वे सेवा–भाव को श्रेष्ठ मानते है राजा और प्रजा के बीच कैसा संबंध होना चाहिए. इस पर उन्होंने लिखा है– " आज राजा और प्रजा में भोक्ता और भोग्य का संबंध नही है अब सेवक और सेव्य का संबंध है। अब अगर किसी राजा की इज्ज्त है तो उसकी सेवा– प्रवृति के कारण । जब तक कि कोई सेवा मार्ग पर चलना नही सीखता जनता के दिलों में घर नही कर पाता। साहित्य का मूल आधार जीवन के अनुभव हैं, "हम जीवन में जो कुछ देखते हैं या जो कुछ हम पर गुजरती है, वही अनुभव और वही चोटें कल्पना में पहुँच कर साहित्य–सृजन की प्रेरणा बनती है। कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दर्जे की होती है। इस प्रकार साहित्य का मूल आधार स्वानुभूति है, प्रमुखता उसी की है, कल्पना तो अभिव्यक्ति में सहायक मात्र है। हंस के आत्मकथा – अंक के सम्बंध में नन्ददुलारे वाजपेयी के आक्षेपों के उत्तर में प्रेमचंद ने लिखा था– "साहित्य में कल्पना भी होती है और आत्म अनुभव भी जहाँ जितना आत्मानुभव अधिक होता है, वह साहित्य उतना ही चिरस्थायी होता है।'

'रंगभूमि की सोफिया स्वभाव से चिन्तनशील है। वह आत्मदर्शन और अनुभव को काव्य का आन्तरिक तत्त्व मानती है। प्रभुसेवक की काव्य रचनाओं की आलोचना उसने इस प्रकार की है– "इन्हें (प्रभुसेवक को) उन सदभावों और पवित्र आवेगों को व्यक्त करने का क्या अधिकार है, जिनका आधार आत्मदर्शन और अनुभव पर न हो।प्रेमचंद बार–बार स्पष्ट करते हैं कि कृत्रिमता पर आधारित साहित्य कभी प्रभावित नहीं कर सकता। साहित्य को आकर्षण प्रदान कराने वाला तत्त्व सच्ची अनुभूति है– "उसकी उत्कृष्टता की वर्तमान कसौटी अनुभूति की तीव्रता है जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति उत्पन्न करता है।

। इसी प्रश्न को लेकर उपन्यासकारों के दो दल हैं– एक आदर्शवादी, दूसरा यथार्थवादी यथार्थवाद का आशय स्पष्ट करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं– "यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है...... यथार्थवादी अनुभव की बेड़ियों में जकड़ा होता है और चूँकि संसार में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है इसलिए यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है। मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नज़र आने लगती है।

युगजनित आन्दोलनों से प्रभावित होने पर भी प्रेमचंद जी ने मानवता की व्यापक भूमि का तिरस्कार नहीं किया। इसलिए किसी वर्ग–विशेष से उनका पूर्ण मानसिक गठबन्धन नहीं हो सका। गरीब मजदूरों–किसानों के प्रति उन्हें अपार सहानुभूति थी, किन्तु मनुष्यता में उनका विश्वास आजीवन बना रहा। घृणित से घृणित पात्र को भी उन्होंने जीवन के किसी एकान्त क्षण में क्षमा कर दिया है। जैसा कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लिखा है– "मनुष्य जीवन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर मनुष्यता के वास्तविक लक्ष्य तक ले जाने का संकल्प, मनुष्य के दुःखों को अनुभव करा सकने वाली दृष्टि की प्रतिष्ठा और ऐसे दृढ़चेता आदर्श चरित्रों की सृष्टि जो दीर्घकाल तक मनुष्यता को मार्ग दिखाते रहें। जो साहित्यकार ऐसा नहीं कर पा रहा है, उसमें कहीं न कहीं कोई त्रुटि है। बड़े साहित्य का रचयिता ही बड़ा साहित्यकार है। आचार्य द्विवेदी द्वारा स्थापित उपरोक्त मानदण्डों पर प्रेमचंद व प्रेमचंद का साहित्य खरा उतरता है।

भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में उन्होंने अपने मानवतावादी मूल्यों को प्रस्तुत किया। जागरण के 5 सितम्बर, 1932 के अंक में प्रकाशित उनके विचार द्रष्टव्य हैं– "हमारे देश की संस्कृति कर्तव्य प्रधान, धर्म प्रधान, परमार्थ प्रधान, अहिंसा प्रधान, व्रत और नियम प्रधान संस्कृति है।प्रेमचंद के प्रायः सभी उपन्यासों में मानवतावादी मूल्यों का किसी न किसी रूप में निरूपण देखने को मिलता है मानवता के कल्याण की –– तिकारी रचनाकार साहित्यिक क्षेत्र में ों के निरूपण के सन्दर्भ में प्रेमचंद प से प्रभावित हुए। उन्होंने इन सभी थे। इस रूप में उनके मानवतावादी प स्पष्ट परिलक्षित होती है।

संदर्भ सूची

1. गोदान का महत्व, संपादक, डॉ. सत्यप्रकाष मिश्र, नई कहानी 170 आलोपीबाग इलाहाबाद,
2. संस्करणः 1992 ई.
3. प्रेमचंद जीवन, कला और कृतित्व, हंसराज रहबर, साक्षी प्रकाषन, नई दिल्ली,
4. बाल मनोवैज्ञानिकः प्रेमचंद, डॉ. विजय कुमार शर्मा, शलभ पब्लिषिंग हाउस मेरठ,
5. प्रेमचंद और उनका युग, डॉ. राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली